बैंकिंग क्षेत्र में सुधार
(BANKING SECTOR REFORMS)

बैंकिंग क्षेत्र में सुधारों के लिए 1985 में कुछ सिफारिशें चक्रवर्ती समिति ने की थीं। इन सुधारों का लक्ष्य बैंकिंग क्षेत्र की निष्पत्ति में उच्च स्तर प्राप्त करना था तथापि सरकार इन उपायों को प्रतिबद्धता के साथ लागू नहीं कर सकी। 1991 में जब देश गम्भीर आर्थिक संकट में फंस गया तो उस समय व्यापक आर्थिक सुधारों को लागू करने के सम्बन्ध में निर्णय लिया गया। बैंकिंग क्षेत्र में सुधार इन्हीं आर्थिक सुधारों का एक हिस्सा थे। जैसाकि ऊपर कहा गया है, सरकार ने वित्तीय व्यवस्था पर एम. नरसिंहम की अध्यक्षता में एक समिति अगस्त 1991 में नियुक्त की। सरकार ने एक दूसरी समिति बैंकिंग क्षेत्र में सुधारों के संबंध में एम. नरसिंहम की अध्यक्षता में नियुक्त की। इस समिति ने अप्रैल 1998 में अपनी सिफारिशें दीं। 1990 के दशक में और उसके बाद के वर्षों में उदारीकरण के दौरान बैंकिंग क्षेत्र में जो भी सुधार किए गए हैं उन सभी पर नरसिंहम समिति की सिफारिशों का प्रभाव देखा जा सकता है।

विवेकपूर्ण नियंत्रण एवं निरीक्षण
(Prudential Regulation and Supervision)

वित्तीय बाजारों में धोखाधड़ी द्वारा उत्पन्न होने वाली वित्तीय घबराहट को रोकने के लिए विवेकपूर्ण नियंत्रण एवं निरीक्षण की आवश्यकता है। किसी भी एक बैंक पर भुगतान के लिए लगने वाली दौड़ से वित्तीय दृष्टि से समर्थ बैंकों पर भी जब भुगतान की अनाप-शनाप मांग पैदा होती है तो उन बैंकों के भी टूट जाने का खतरा पैदा हो जाता है। इसलिए बैंकिंग व्यवस्था के स्वस्थ विकास के लिए उस पर पर्याप्त निरीक्षण और नियमन की आवश्यकता होती है। लेकिन अब इस बारे में आम सहमति है कि ब्याज की दरों और साख के आवंटन के बारे में बैंकों पर नियमन और नियंत्रण बहुत उपयुक्त नहीं होता। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आम सहमति है कि बैंकों पर इस संबंध में न्यूनतम नियंत्रण होना चाहिए। परन्तु ऐसा राष्ट्रीयकृत बैंकों के बारे में सहीं नहीं है क्योंकि बैंकों के मैनेजर अक्सर अंशधारियों के हितों के लिए काम करने के बजाय अपने हित में काम करते हैं। **राष्ट्रीयकृत बैंक की प्रधान अंशधारी सरकार होती है इसलिए यह आवश्यकता है कि बैंकों पर पर्याप्त साधन व्यवस्था और पोर्टफोलियो संकेंद्रण के बारे में नियम बनाकर कुछ नियंत्रण रखा जाए। दूसरे, बैंकों पर यदि निरीक्षण व्यवस्था को मजबूत नहीं बनाया जाता तो वित्तीय घोटालों की संभावना होती है जिससे गंभीर आर्थिक संकट उत्पन्न**

Scanned with CamScanner

हो सकते हैं। भारत में अनेक बैंकों ने 1992 और 2001 में शेयर बाजार में हुए घोटालों में अपना योगदान किया था। इस घटनाओं में बैंकों ने शेयर दलालों को गैर कानूनी ढंग से उधार दिया था और परिणामस्वरूप नुकसान उठाया था। इन अनियमिताओं से बैंकों को लगभग 5 हजार करोड़ रुपए का नुकसान हुआ था। इस तरह के घोटालों को पर्याप्त निरीक्षण और समुचित नियंत्रण व्यवस्थाओं को लागू करके रोक पाना संभव है।

वित्तीय व्यवस्था पर नरसिंहम समिति ने सिफारिश की कि देश में बैंकिंग व्यवस्था पर निरीक्षण को अधिक कारगर बनाना चाहिए। समिति की सिफारिशों को सरकार ने मान कर रिजर्व बैंक के माध्यम से लागू करने का प्रयास किया। साथ ही अप्रैल 1992 में कुछ ऐसे नियम बनाए जिनमें परिसंपत्तियों का वर्गीकरण एवं उनके लिए व्यवस्था आदि का प्रवन्ध किया। ये सभी उपाय Basel पूंजी पर्याप्तता मापदंड (जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य मापदंड है) के अनुरूप थे। इस समय ये मापदंड पूरी तरह से लागू किए जा रहे हैं। निष्क्रिय ऋणों पर अर्जित आय को बैंकों की प्राप्त आय के रूप में नहीं देखा जा सकता। अब बैंकों के निष्क्रिय ऋण (Non-Performing Loans) की श्रेणी में उन उधारों को रखा जाता है जिन पर पिछले 180 दिन में किसी तरह का ब्याज नहीं प्राप्त हुआ हो। **पूंजी की पर्याप्तता के लिए 9 प्रतिशत का जोखिम भारित परिसंपत्ति अनुपात (Capital to Risk Weighted Assets Ratio अर्थात् CRAR) तय किया गया है।** हाल के वर्षों में सभी बैंक न्यूनतम CRAR को पार करने में सफल हो गए हैं। मार्च 2013 के अन्त में सभी बैंकों की CRAR 13.9 प्रतिशत थी।

निरीक्षण के लिए एक वित्तीय निरीक्षण का बोर्ड स्थापित किया गया है। इस बोर्ड को निरीक्षण संबंधी विभिन्न अधिकार प्राप्त हैं। इस समय यह रिजर्व बैंक के तत्त्वाधान में काम कर रहा है।

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को बहाल करना
(Rehabilitation of Nationalised Public Sector Banks)

1991 में बैंकिंग व्यवस्था बहुत कमजोर थी। बैंकों के पास ऐसे बहुत ऋण जमा हो गए थे जिन पर उन्हें ब्याज की प्राप्ति नहीं होती थी। उधार की ये राशियां सार्वजनिक बैंकों के कुल ऋणों की औसतन लगभग 25 प्रतिशत थीं, लेकिन सभी बैंकों की स्थिति एक जैसी खराब नहीं थी। कुछ बैंकों के पास ब्याज न अर्जित कर पाने वाले ऋण कुल ऋणों के 8-10 प्रतिशत तक ही थे। परंतु अनेक सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने भारी हानियाँ उठाई। लेकिन बाद के वर्षों में स्थिति में सुधार हुआ है और सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के ब्याज न पाने वाले ऋण (जिन्हें नान-परफार्मिंग परिसंपत्तियां या Non Performing Assets कहा जाता है) जो मार्च अन्त 2004 में 7.4 प्रतिशत थे, मार्च 2011 के अन्त में 2.5 प्रतिशत रह गए। परन्तु बाद में स्थिति बिगड़ी तथा सकल ऋण के प्रतिशत के रूप में सकल NPA बढ़कर मार्च 2012 के अन्त में 3.1 प्रतिशत तथा मार्च 2013 के अन्त में 3.6 प्रतिशत हो गए। परिसंपत्ति गुणात्मकता (asset quality) के गुणह्रास की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की स्थिति ज्यादा खराब थी। रिजर्व बैंक के अनुसार, "NPAs में वृद्धि का कारण संभवतः घरेलू बाजार में आई शिथिलता तथा साख प्रस्तावों की अपर्याप्त जाँच व देख (monitoring) थी।"[6]

1990 के दशक के मध्य में बैंकों में सुधार अभियान चलाना जरूरी था। सरकार ने इस कार्य के लिए पुर्नपूंजीकरण का रास्ता (recapitalisation route) को चुना। इस उपाय में सरकार के लिए बैंकों में अपनी ओर से पूंजी डालना जरूरी था। इस पूंजी के पहुंच जाने से ब्याज न अर्जित करने वाले ऋणों का बैंकों पर दुष्प्रभाव कम हो गया था। मार्च 1997 तक पुर्नपूंजीकरण प्रक्रिया की लागत 14 हजार करोड़ रुपए आ चुकी थी। बाद में सरकार ने बैंकों के लिए विवेकपूर्ण मानदंडों को अपनाना जरूरी कर दिया। इन विवेकपूर्ण मानदंडों में एक मानदंड यह था कि जोखिम भारित परिसम्पत्ति अनुपात CRAR 9 प्रतिशत अवश्य होना चाहिए। इसके लिए बैंकों को 31 मार्च, 2000 तक का समय दिया गया।

बैंकों के लिए वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) और नकद कोष अनुपात (CRR) को कम करना
(Reduction in the SLR and CRR)

भारत में मुद्रास्फीति पर नियंत्रण लगाने की जरूरत से नकद कोष अनुपात (CRR) और वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) दोनों को काफी ऊंचा कर दिया गया था। एक वक्त था जब भारत में नकद कोष अनुपात 12 प्रतिशत और वैधानिक तरलता अनुपात लगभग 38.5 प्रतिशत हो गया था। नरसिंहम समिति ने सिफारिश की कि दोनों को कम करके इनके न्यूनतम स्तर पर पहुंचाना चाहिए। नरसिंहम समिति के अनुसार इन दोनों में भारी कमी करने से बैंकों की लाभप्रदता में सुधार होगा। इस दिशा में कार्य करते हुए अक्टूबर 1997 को वैधानिक तरलता अनुपात गिराकर 25 प्रतिशत कर दिया गया। 8 नवंबर 2008 को वैधानिक तरलता अनुपात कम करके 24 प्रतिशत कर दिया गया। **14 जून 2014 को वैधानिक तरलता अनुपात 22.5 प्रतिशत कर दिया गया।** 14 जून 2003 को नकद कोष अनुपात कम करके मांग और काल दायित्वों का 4.5 प्रतिशत कर दिया गया। लेकिन सितम्बर 2004 में बढ़ी हुई तरलता पर नियंत्रण लगाने के लिए इसे बढ़ाकर 5 प्रतिशत कर दिया गया। बाद में इसमें कई चरणों में और वृद्धि की गई। 30 अगस्त 2008 को नकद कोष अनुपात 9.0 प्रतिशत था। परन्तु 2008-09 के उत्तरार्द्ध में आर्थिक शिथिलता आने पर नकद कोष अनुपात को कम करने की नीति अपनाई गई ताकि साख में वृद्धि करके अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त मांग पैदा की जा सके। नकद कोष अनुपात को विभिन्न चरणों में कम किया गया और 17 जनवरी 2009 को इस 5.0 प्रतिशत कर दिया गया। परन्तु बाद में अर्थव्यवस्था में तेज़ कीमत वृद्धि हुई। इस पर नियंत्रण पाने के लिए नकद कोष अनुपात को चरणों में वढ़ाया गया — 13 फरवरी 2010 को 5.5 प्रतिशत, 27 फरवरी 2010 को 5.75 प्रतिशत तथा 24 अप्रैल 2010 को 6.0 प्रतिशत। बाद में विभिन्न चरणों में इसे कम किया गया। **9 फरवरी 2013 को नकद कोष अनुपात 4.0 प्रतिशत कर दिया गया।**

---

6. *Report on Trend and Progress of Banking in India*, 2011-12, *op.cit.*, p. 66.

Scanned with CamScanner

ब्याज की दरों पर नियंत्रण समाप्त करना
(Deregulation of Interest Rates)

भारत में दीर्घकाल तक ब्याज की दरें प्रशासन के द्वारा निर्धारित की जाती रही हैं। 1985 में चक्रवर्ती समिति ने प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों (जैसे कृषि, लघु उद्योग, कुटीर उद्योग इत्यादि) को रियायती ब्याज दरों पर ऋण देने की नीति का समर्थन किया। परन्तु इस समिति ने भी इस बात पर जोर दिया कि रियायती ब्याज दरों पर ऋण देने की व्यवस्था अत्यन्त जटिल हो चुकी है और उसमें युक्तिकरण (rationalisation) की आवश्यकता है। सामाजिक उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए बहुत-सी रियायती ब्याज दरें अलग-अलग लक्षित वर्गों के लिए लागू की गई हैं जिनसे भ्रम तथा अस्पष्टता की स्थिति पैदा होती है। इसके अलावा, रियायती ब्याज दरों पर ऋण उपलब्ध कराने की नीति पर पूरा ध्यान केन्द्रित करने की नीति से यह हानि हुई कि उपेक्षित सेक्टरों (खासतौर पर पिछड़े क्षेत्रों में उपेक्षित सेक्टरों) को समय पर व पर्याप्त मात्रा में ऋण देने की ओर ध्यान नहीं दिया गया हालांकि यह सामाजिक न्याय को प्राप्त करने का अधिक कारगर तरीका था।

रियायती ब्याज दरों पर बैंकों को ऋण देने के लिए विवश करने का परिणाम यह हुआ कि उनकी लाभप्रदता कम हो गई। इसके साथ-साथ उधार ली जाने वाली राशियों का दुरुपयोग किया गया। कुछ लोगों ने उधार की राशि से अवांछित परियोजनाओं को पूरा करने की कोशिश की और कुछ उद्यमियों ने आवश्यक रूप से अधिक माल को जमा किया। इसलिए नरसिंहम समिति ने रियायती दरों पर ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था को समाप्त करने की सिफारिश की। **इस समय ऋणों पर ब्याज दरें वही उचित मानी जाती हैं जो संख्या में बहुत अधिक न हों और जमा राशि प्राप्त करने की ब्याज-दरों की तुलना में 1 से 3 प्रतिशत प्रति वर्ष से ज्यादा न हों।** अप्रैल 1992 से बैंकिंग व्यवस्था में ब्याज की दरें मुक्त और सरल हो गई हैं। उनमें लोच भी आई है। अब बैंकों को अनेक महत्त्वपूर्ण ब्याज की दरें निर्धारित करने का अधिकार है।

प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना
(Promoting Competition)

1991 तक बैंकिंग क्षेत्र में बहुत कम प्रतिस्पर्धा थी। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक बैंकिंग उद्योग में अपने लिए महत्त्वपूर्ण स्थिति बना चुके थे। वे अपनी परिसंपत्तियों के आधार पर अन्य बैंकों से बहुत बड़े थे। इस स्थिति में परस्पर प्रतिस्पर्धा का प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन **उदारीकरण की प्रक्रिया के दौरान सरकार ने बैंकिंग उद्योग को प्रतिस्पर्धात्मक बनाने का प्रयास किया है। इसके लिए सरकार ने विभिन्न बैंकों को काफी स्वायत्तता प्रदान की है।** नए निजी बैंक भी आकार में यद्यपि बड़े हैं तथापि उनकी भी एकाधिकारी स्थिति बनने की कोई संभावना नहीं है। अतः अब भारतीय बैंकिंग ढांचे में विभिन्न प्रकार के बैंकों में परस्पर प्रतिस्पर्धा की संभावनाएं ज्यादा बन गई हैं।

निर्देशित साख को धीरे-धीरे समाप्त करना
(Phasing out of Directed Credit)

राष्ट्रीयकरण के बाद भारत के बैंकों ने सरकारी दबाव में निर्देशित साख की नीति को अपनाया। इस तरह की साख से बैंकों की लाभप्रदता कम हुई और कुशलता और सामाजिक न्याय की दृष्टि से भी कोई विशेष अधिक फायदा नहीं हुआ। कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि इस नीति के द्वारा कृषि क्षेत्र में रोजगार विस्तार हो सकता है। प्राथमिकता क्षेत्र को मिलने वाली साख सहायता रोजगार की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारत में कुटीर उद्योगों को सरल शर्तों पर उधार लगभग दो दशकों से मिलता रहा है। **नरसिंहम समिति की राय में निर्देशित साख के लिए अब कोई औचित्य नहीं है। इसलिए समिति का सुझाव है कि बैंक समस्त उधार की राशि का 40 प्रतिशत के बजाय केवल 10 प्रतिशत प्राथमिकता क्षेत्रों को दें।** एक बार यदि यह नीति एक सीमा तक कारगर सिद्ध होती है तो यह भी सोचा जा सकता है कि बैंक निर्देशित साख को देना बिल्कुल बंद कर दें।

बैंकिंग क्षेत्र में लागू किए गए कुछ महत्त्वपूर्ण सुधार निम्नलिखित हैं :

1. बैंकों के तुलन-पत्र (balance sheet) और लाभहानि खाते के पूर्वप्रचलित स्वरूप बैंकों की वास्तविक स्थिति को प्रकट नहीं करते थे। अतः उनमें संशोधन किया गया है और 1991-92 के बैंकिंग लेखा वर्ष से लागू किया गया है।

2. जिन बैंकों ने पूंजी पर्याप्तता मानदंडों और विवेकपूर्ण लेखा मानकों को प्राप्त कर लिया है वे अब रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना ही शाखा खोल सकते हैं। बैंक अपने शाखा तंत्र का विवेकीकरण भी कर सकते हैं।

3. रिजर्व बैंक ने निजी क्षेत्र में बैंकों की स्थापना के लिए कुछ निर्देशक सिद्धान्त घोषित किए हैं। ये बैंक वित्तीय दृष्टि से सक्षम होने चाहिए। इसके अलावा इन बैंकों को प्राथमिकता क्षेत्रों के लिए निर्धारित साख के लक्ष्यों को अन्य बैंकों की तरह ही प्राप्त करना होगा।

4. बैंकिंग सुधारों से पहले बैंक ऋणों पर लगभग 20 विभिन्न ब्याज दरें होती थीं जिन्हें 1993-94 के वित्तीय वर्ष में घटा कर 3 कर दिया गया। ब्याज दर ढांचे को एकीकृत करने के इस उपाय से बैंकिंग प्रणाली में अन्योन्य अर्थ-सहायता (cross-subsidy) का अंश कम होगा।

5. रिजर्व बैंक के एक उप-गवर्नर की अध्यक्षता में वित्तीय निरीक्षण के लिए एक नए बोर्ड के गठन से रिजर्व बैंक की निरीक्षण व्यवस्था को ज्य समर्थ बनाया गया है। यह बोर्ड साख प्रबन्ध, परिसंपत्ति, आय अभिज्ञान (income recognition), पूंजी पर्याप्तता पूर्वोपाय और राजकोष प्रचालन सम्बन्धित नियमों को विधिवत लागू करवाने का प्रयास करता है।

Scanned with CamScanner

6. बैंकों के प्रबन्ध और उनकी निष्पत्ति को सुधारने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक और सार्वजनिक बैंकों के बीच समझौते किए गए हैं। इस दृष्टि से सूचना प्रणाली और आंतरिक लेखा-परीक्षण एवं नियंत्रण का काफी महत्त्व है।

7. बैंकों और दूसरे वित्तीय संस्थानों की बीते वर्षों में ऋण-वसूली असंतोषजनक रही है। अतः 1993 में एक अधिनियम बनाया गया जिसके अंतर्गत ऋणों की वसूली को सहज बनाने के लिए विशेष वसूली अधिकरण (Special Recovery Tribunals) स्थापित करने की व्यवस्था है।

8. अधिकतम बैंक वित्त के निर्धारण के लिए निर्देशित सिद्धान्तों को अधिक लचीला बना दिया गया है।

ब्याज दरों की मूल दर प्रणाली लागू करना
(Introduction of Base Rate System of Interest Rates)

वर्ष 2003 में रिजर्व बैंक ने बेंचमार्क प्राइम उधार दर (Benchmark Prime Lending Rate or BPLR) को लागू किया। इसका उद्देश्य एक ऐसा मानक प्रस्तुत करना था जिसके आधार पर बैंक अपने ऋण-उत्पादों की कीमत इस प्रकार तय कर सकें कि वे उनकी वास्तविक लागत को प्रकट करें। परन्तु **BPLR प्रणाली उधार दरों में पारदर्शिता लाने के अपने उद्देश्य को प्राप्त कर पाने में असफल रही।** इसका मुख्य कारण यह था कि BPLR प्रणाली के अन्तर्गत बैंक इस दर से कम दरों पर ऋण दे सकते थे। इसी कारण से यह जानना भी मुश्किल था कि रिजर्व बैंक की नीति दरों (policy rates) का बैंकों की उधार दरों पर क्या प्रभाव पड़ता है।

इस विषय पर विचार करने के लिए रिजर्व बैंक ने दीपक मोहन्ती की अध्यक्षता में एक वर्किंग ग्रुप (Working Group) का गठन किया। इस ग्रुप से BPLR प्रणाली की समीक्षा करने तथा उधार कीमतों (credit pricing) को और पारदर्शी बनाने के लिए सुझाव देने को कहा गया। इस वर्किंग ग्रुप ने 20 अक्टूबर 2009 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसके सुझावों के आधार पर तथा अन्य विशेषज्ञों से प्राप्त सुझावों के आधार पर रिजर्व बैंक ने 9 अप्रैल 2010 को मूल दर प्रणाली (Base Rate system) के संबंध में दिशा-निर्देश जारी किए। **1 जुलाई 2010 से मूल दर प्रणाली लागू हो गई।** मूल दर में उधार दरों के वे सभी तत्व शामिल हैं जो सभी प्रकार के उधारकर्ताओं के सदर्भ में लागू हैं। उधारकर्ताओं को जो ब्याज दरें देनी होंगी वे मूल दर से अधिक होंगी। उनका स्तर मूल दर में विशिष्ट उधारकर्ताओं पर लगाए जाने वाले खर्च (borrower specific charges) को जोड़ कर प्राप्त किया जाएगा। इस प्रकार **मूल दर सभी ऋणों पर न्यूनतम दर है और इसलिए बैंक इस दर से कम दर पर ऋण नहीं दे सकते** सिवा कुछ अपवादों के। सभी नए ऋणों और नवीकरण के लिए आए पुराने ऋणों पर मूल दर प्रणाली लागू होगी। BPLR पर आधारित चालू ऋण अपनी पक्वनधि (maturity) तक इसी व्यवस्था के अधीन रहेंगे। मूल दर प्रणाली को लागू करने के बाद से विभिन्न बैंकों की मूल दरों में काफी एकसारता देखने में आई है। मूल दर प्रणाली BPLR प्रणाली की अपेक्षा अधिक पारदर्शी तथा रिजर्व बैंक की नीति दरों में वृद्धि के प्रति अधिक संवेदनशील सिद्ध हुई है। इससे रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति के ज्यादा प्रभावी होने की संभावना है।[7]

बैंकिंग नियम (संशोधन) अधिनियम, 2012
(BANKING LAWS (AMENDMENT) ACT, 2012)

लोक सभा ने 18 दिसंबर 2012 को बैंकिंग नियम (संशोधन) विल 2012 पारित कर दिया। **इसे जनवरी 2013 में राष्ट्रपति की मंजूरी मिली और इसे बैंकिंग नियम (संशोधन) अधिनियम 2012 का नाम दिया गया। यह विल रिजर्व बैंक के लिए रास्ता खोलता है कि वह नए बैंक लाइसेंस जारी करे तथा बैंकिंग क्षेत्र में और पूंजी निवेश के लिए अवसर प्रदान करता है।** इस विल में निजी क्षेत्र के बैंकों में निवेशकों के वोट अधिकार (voting rights) 10 प्रतिशत से बढ़ा कर 26 प्रतिशत करने की व्यवस्था है। इससे उम्मीद है कि बैंकिंग क्षेत्र में विदेशी निवेश बढ़ेगा। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में वोट अधिकार 'एक' प्रतिशत से बढ़ा कर 10 प्रतिशत कर दिया गया है।

नए बैंक लाइसेंस जारी करने के निर्णय से बड़े औद्योगिक घरानों तथा गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों द्वारा बैंकिंग क्षेत्र में प्रवेश करने की आशा है। जहां तक गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों का संबंध है, वे केवल एक या दो क्षेत्रों में ही काम कर रही होती हैं। इसलिए एक बिन्दु के बाद यदि उन्हें अपना विकास जारी रखना है तो यह आवश्यक हो जाता है कि वे अपने पोर्टफोलियो (portfolio) या व्यवसाय में कई प्रकार के पदार्थ (multiple products) शामिल करें और यह तभी संभव है यदि वे बैंकिंग क्षेत्र में कदम रखें। परन्तु बैंकिंग क्षेत्र में बड़े औद्योगिक घरानों को प्रवेश की अनुमति देना खतरे से खाली नहीं है। 16 जनवरी 2013 को जारी अपनी रिपोर्ट Financial System Stability Assessment Update में **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भारत को वाणिज्यिक बैंकों में बड़े औद्योगिक घरानों के प्रवेश के प्रति सचेत किया है तथा यह तर्क दिया है कि इससे होने वाली हानियां, अनुमानित लाभों से कहीं अधिक होंगी।**[8] रिपोर्ट में कहा गया कि प्रवेश की अनुमति देने से पहले यह जरूरी है कि भारत एक व्यापक ढाँचे के कार्यान्वयन के लिए स्वयं को तैयार

7. Reserve Bank of India (*Report on Trend and Progress of Banking in India* 2009-10 (Mumbai, 2010), Box IV. 2, p. 71 and Reserve Bank of India *Annual Report* 2010-11 (Mumbai, 2011), Box III. 1, p. 73.
8. "Stability Assessment Update: IMF Sounds Warning of Bank Licences." *Mint*, January 17, 2013, p. 1.

Scanned with CamScanner

करे तथा उपयुक्त अनुभव प्राप्त करने के बाद ही इस प्रकार का कदम उठाए। अजय शाह के अनुसार, "बड़े औद्योगिक घरानों द्वारा नियंत्रित बैंकों के परिप्रेक्ष्य में गंभीर चिन्ता के कारण हैं। बड़े अंशधारी होने के कारण इनका बैंकों के प्रबन्धन में बहुत हस्तक्षेप रहेगा। इनके अधीन काम कर रहे उच्च अधिकारी हमेशा ऐसे तरीके ढूँढते रहेंगे जिनसे वे नियंत्रणों व नियमों का उल्लंघन कर सकें तथा हमारी नियंत्रक संस्थाएं इन्हें रोक नहीं पाएंगी।"[9] इसी तरह की बात नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री जोसेफ स्टिगलिट्ज ने 3 जनवरी 2013 को दिए गए एक अभिभाषण में कही। स्टिगलिट्ज के अनुसार, "वित्तीय क्षेत्र की एक वास्तविक समस्या विभिन्न हितों में परस्पर-संघर्ष है और जब आप बड़े उद्योगपतियों को बैंक खोलने की अनुमति देते हैं तो आप इन उद्योगपतियों के परस्पर-संघर्षों के लिए रास्ता खोलते हैं।" उनके अनुसार, "यदि आप अपना ही पैसा निकाल रहे हैं तो यह एक बात है। परन्तु यदि आप जमाकर्ताओं का पैसा ले रहे हैं तो यह एक सार्वजनिक जिम्मेदारी बन जाती है।"[10]

रिजर्व बैंक ने 1 जुलाई 2013 तक नए बैंकिंग लाइसेंसों के लिए प्रार्थना-पत्र भरने की तारीख रखी थी। कुल 25 प्रार्थना-पत्र प्राप्त हुए जिसमें कुछ औद्योगिक घरानों जैसे बिड़ला, अनिल अंबानी ग्रुप, लार्सन एंड टुब्रो तथा बजाज ग्रुप इत्यादि के भी शामिल थे। रिजर्व बैंक ने इन प्रार्थना-पत्रों पर निर्णय लेने के लिए भूतपूर्व गवर्नर बिमल जालान की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया। समिति ने सभी प्रार्थना-पत्रों का अध्ययन करने के बाद दो नए बैंक लाइसेंस जारी किए – एक IDFC (Infrastructure Development and Finance Corporation) के हक में तथा दूसरा कोलकाता में स्थापित माइक्रो (micro) ऋणदाता कंपनी बंधन (Bandhan) के हक में। ऊपर व्यक्त बातों को ध्यान में रखते हुए संभवतः समिति ने बड़े औद्योगिक घरानों के प्रार्थना-पत्र स्वीकार नहीं किए जो अपने आप में सही निर्णय है।

Scanned with CamScanner